REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.2331(UIF)
VOLUME - 7 | ISSUE - 3 | DECEMBER – 2017

रामचरित मानस में व्यक्त समन्वय भावना

प्रा. डॉ. मीना जाधव
जवाहर महाविद्यालय, अणदूर,

लोकनायक तुलसीदास ने अपनी कालजयी कृति रामरितमानस की रचा संवत् 1631 में आरंभ की और लगभग दो वर्ष सात महिनों में इसे पूरा किया गया। तुलसी साहित्य अपनी सहिष्णूता एवं समन्वय–क्षमत के कारण ही विशिष्ट कहलाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार उनका सारा काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है। तुलसी शुभ के संग्राहक, घातक प्रचलित मान्यताओं को विरोधी और समयानुकूल, नविन उचित, लोक कल्याणकारी मान्यताओं के स्थापक है। तुलसी का समन्वयपूरित मानस आदर्श लोकजीवन का प्रेरणा स्त्रोत है।

बाबा तुलसीदास ने अपनी अथाह समन्वय बुध्दि, सूक्ष्म अन्वयेषण और गहन अनुशीलता से लोकमंगल हेतु धर्म, भक्ति तथा कवित्व की त्रिपथगा का निर्माण किया। उन्होंने दर्शन,धर्म, समाज सभी क्षेत्रों में समन्वय का अद्‌भूत प्रयास किया है। जो आज की परिस्थितीयों में और अधिक प्रासंगिक हो गया है।

1. द्वैत – अद्वैत मे समन्वय – अद्वैतवाद संसार को झूठा, माया को मिथ्या और केवल ब्रहम को सत्य मानते है जबकि व्दैतवादी ब्रहमके साथ ही संसार औरमकाया को भी सत्य मानते है। तुलसीदास को अव्दैतवादी या विशिष्टाद्वैतवादी भी कहा जाता है जबकि वे स्वंय यह स्पष्ट कहते है – कोउ कह सत्य, झूठ कह कोउ, जुगल प्रबल करि माने।

तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम, सो आपन पहिचाने।

इन पंक्तियों से स्पष्ट हो जाता है कि वे अद्वैत और विशिष्टाद्वैत तथा द्वैताद्वैत आदि सिध्दान्तों का खंडन कर रहे है। तुलसी इन सिध्दान्तों कों आंशिक रुप से ही सत्य मानते है। वे मानते है कि ब्रहम निर्गुण,निराकार,अजन्मा, अनादि, सत्–चित्–आनंदमय है पर जीव ब्रहम का ही अंश है – ईश्वर अंश जीव अविनाशी लेकिन वे मानते है कि ईश्वर और जीव में भेद हे क्योंकि जीव माया के वश मैं है किंतु ईश्वर माया से परे है।

2. निर्गुण और सगुन में समन्वय – तुलसीदास अपने युग के अनेक विचारों में समन्वय करते है। ज्ञान मार्गी ब्रहम को निर्गुण मानते हैं तो भक्तिमार्गी ब्रहम को सगुण मानते है। तुलसी कहते है

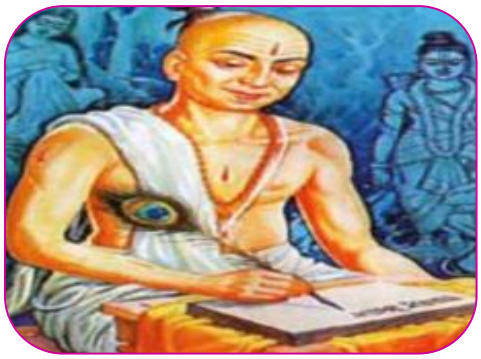

एक अनीह अरुप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा।।
व्यापक विश्वरुप भगवाना। तेहिं धरी देह चरितकृत नाना।।
निर्गुण,निराकार,व्यापक भगवान ही देह धारण कर लीला करते है।
तुलसी ईश्वर को निर्गुण सगुण दोनों रुपों में देखते है–
हिय निरगुन,नयनहि सगुन,रसना नाम सुनाम।
तुलसी ज्ञान के लिए निर्गुण और भक्ति के लिए सगुण रुप स्विकारते है।

3. विद्या–अविद्या का समन्वय – अव्दैतवादी माया को मिथ्या व असत्य मानते है जबकि वैष्णव माया को सत्य मानते हैं। तुलसी दोनों में समन्वय साधते है। उनके अनुसार माया के दो रुप है अविद्या माया और विद्या माया। अविद्या माया मोहकारिणी है जिसके फेरे में पडकर मनुष्य नाना प्रकार से नातचा है और दुख–उन्माद बढाता है। ऐसी माया असत्य है। जबकि विद्या माया से सृष्टि का विकास और विस्तार होता है। भक्तों पर विद्या माया का ही प्रभाव होता है जिससे उनका कल्याण होता है।

4. ज्ञान व भक्ति का समन्वय – जीवन की पूर्णता ज्ञान, कर्म व भक्ति के समन्वय से ही होती है। ये तीनों ही अन्योन्याश्वित है। सतकर्म से मन निर्मल होता है और निर्मल मन में ही भक्ति और ज्ञान का उदय होता है। ज्ञान और भक्ति मुक्ति के साधन है। कोई ज्ञान को श्रेष्ठ मानता है तो कोई भक्ति को। तुलसी दोनों में समन्वय देखते है–

भगतहिं ग्यानहिं नही कुछ भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा।
तुलसी की दृष्टी में तो ज्ञानी भक्त ही सर्व श्रेष्ठ है।

5. भौव–वैश्णव मतों का समन्वय– शैव और वैष्णव पंथों में बहुत विरोध है। तुलसी की समन्वयक दृष्टि इस विद्वेष को मिटाने के लिए आकुल हो उठी। उन्होंने अपने मानस में षंकर को राम के श्रेष्ठ व महान भक्त के रुप में अभिव्यक्त किया है और राम से शंकर की पूजा भी करवाई है। शिवजी सती के वियोग को राम गुन का बखान करके भूलाने का प्रयास करते है। तो राम शिवलिंग के समक्ष तनमस्तक होते हैं ताकि शिव कृपा हो। इस तरह दोनों पंथो को निकट लाने का प्रयास किया है। राम मानस में कहते है।– संकर प्रिय मम, सिवद्रोही मम दास ते नरकरहि कलपभर,घोर नरक मुहूँ बास इस प्रकार वे शैव और वैष्णव पंथ को निकट लाने का प्रयास करते है।

6. वर्णाश्रम धर्म तथा मानवतावाद का समन्वय –
तुलसीदास वर्णाश्रम धर्म के प्रबल समर्थक थे–
बरनाश्रम निज–निज धरम निरत वेद पथ लोग
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहि भय सोक न रोग
किंतु उनकी दृष्टी संकुचित नही थी। वे कहते है – कोटि विप्र वध लागइ जाहूँ, आए सरन तजउँ नहिं काहू। यदि फिर भी कोई उन्हे ब्राहमणवादी कहे तो उनकी बुध्दि पर तरस ही आ सकता है। वे तो परम मानवतावादी है तभी तो कहते है मानहुँ एक भगति कर नाता। उन्होंने मानवता को सर्वोपरी धर्म माना और सत्य, अहिंसा व परोपकार पर जोर दिया–

परहित सरिस धरम नहिं भाई
परपीडा सम नहिं अघ माई।

7. राजतंत्र और जनमंत्र समन्वय – तुलसी ने मानस में जिस रामराज्य की कल्पना है वह राजतंत्र और जनतंत्र का सुंदर समन्वय है। अकेले राम ही राजा है यह राजतंत्र है। लेकिन यह राजा मुखतुल्य होना चाहिये जो सब अंगो का पालन पोषण विवेक के साथ करें। यदि प्रजा राजभक्त है तो राजा भी प्रजापरायण है। तुलसी के राम जनता को यह अधिकार देते है– नहिं अनीति नहिं कुछ प्रभुताई सुनहु काहु जो तुम्हहि सुहार्स यही तो जनतंत्र है। वे कहते है– जासु राज प्रिय

प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरकअधिकारी।

निष्कर्षतः तुलसीदास का मानस शुभ का संग्राहक है। राजनाथ शर्मा कहते है कि तुलसी प्राचीन और समकालीन भारतीय साहित्य के गंभीर विद्वान, सतत अध्येता और अत्यन्त जागरुक कलाकार थे। उन्होंने मानस लिख कर एक आदर्श लोकनायक को प्रस्तुत किया जो सभी को साथ लेकर सफल समराज्य की स्थापना करता है। जिन्होंने रामचरित मानस के माध्यम से अनेक विचारधाराओं, संप्रदायों, सिध्दान्तो का समन्वय प्रस्तुत किया

है। परम्परागामी होते हुए भी उन्होंने सबका उचित समन्वय करते हुए मानव कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। तभी तो आचार्य शु क्ल उन्हें हिंदी का सर्वाधिक सशक्त और सर्वश्रेष्ठ कवि घोषित करते है। तुलसीदास जी की आस्था सर्वांगपूर्ण और सर्वसमावेश थी जिसे आज लोग भूल रहे है। तुलसीदास ने राम की छवि को भारतीयता का प्रतिक बना दिया, जिसे उसी रुप में संजो कर रखने का दायित्व अब हमारा है। समन्वय, सहिष्णुता की भावना ही भारत को एक सूत्र में बांध कर रख सकती हैं और तुलसी के रामराज्य के स्वप्न को साकार कर सकती हैं।

सूरदास का भ्रमरगीत

कृष्ण–काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि सूरदास साहित्यकाश के सूर्य है। ब्रजभाषा को साहित्यिक रुप प्रदास करनेवाले, गोपियों के रुप में विरह की साक्षात् प्रतिमा महाकवि सूरदास हिंदी–साहित्य की ही नहीं विश्व साहित्य की अमूल्य निधि है। सूरदास का प्रमाणिक जीवन–चरित्र अभी तक अनुपलब्ध है। प्रचलित मान्यताओं के अनुसार आगरा से कुछ दूर स्थित रुनकता के पास स्थित ग्राम साही में सन् 1478 ई.मे अनका जन्म हुआ और सन् 1580 ई.में पारसौली गॉव में उनका निधन हुआ। सूरदास की जन्मान्धता भी विवादास्पद है। सूरदास अपने आरंभिक जीवन में रुनकता के पास, गउघाट नामक स्थान पर विनय के पदा गाया करते थे। वल्लभाचार्य जी से भेंट होने के बाद उनकी प्रेरणा से कृष्ण लीला के पदों की रचना करने लगे। वे उत्तम गयै थे, शास्त्रीय संगीत के ज्ञाता थे। उन्होंने विविध राग–रागिनियों में पद–रचना की है। वे अष्टछाप के मुकुटमणि और श्रीनाथजी के प्रधान कीर्तनिया थे। उनकी प्रमुख प्रामाणिक रचनाएँ सूर–सागर, साहित्य लहरी और सूर–सारावली मानी गई है।

भ्रमरगीत सूरदास की एक उत्कृष्ट निर्मिति है। काव्य रुप की दृष्टि से यह कृति दूत–काव्य की परम्परा में आती है। कृष्ण–भक्तो की ही नहीं अपितु संपूर्ण वैष्णव–भक्तों की यह विशेषता रही है कि उन्होंने अपने आराध्य के प्रति अपना प्रेम–निवेदन सीधा न कर विभिन्न आश्रयों के मध्यम से किया है। सूरदास के भ्रमरगीत की यह विशेषता है कि इसमें मात्र प्रेम और विरह की दशाओं का ही चित्रण नहीं है। जो उध्दव योग का संदेश लेकर आता है वह अंत में गोपियो के प्रेम संदेश को कृष्ण के पास ले जाता है। इस प्रकार से संदेश और प्रति संदेश दोनों इसमें अनुस्यूत हैं। इसका मूल अभिप्राय ज्ञानयोग की पराजय और प्रेम भक्ति की विजय घोषित करना है। सूरदास के भ्रमरगीत का उददेश्य निर्गुण का खण्डन और सगुण का प्रतिपादन करना है। ज्ञान मार्ग के रुक्ष व कठीन मार्ग से बचाकर सरस भक्ति मार्ग की स्थापना करना है।

भ्रमरगीत परम्परा का मूल स्त्रोत श्रीमद्भागवत के दशम् स्कन्ध के पूर्वार्ध का सैतालीसवॉ अध्याय हैं, जिसमे गोपियॉ कृष्ण के प्रिय सखा, उध्दव के समक्ष कृष्ण की चर्चा सुनने में मगन हो जाती है। इसी प्रसंग में एक भौंरा उडता हुआ आया और एक गोपी अपनी खीज प्रकट करने के लिए उसी भौंरे के माध्यम से कृष्ण और उध्दव को खरी खोटी सुनाती है। गोपियॉ प्रेमपूर्ण उलाहनों से कृष्ण के कपटपूर्ण प्रेम, निष्ठूरता और कुरता पर सोदाहरण टिप्पणियॉ करती है और उध्दव के मन पर सगुण भक्ति की छाप भी डालती है। भ्रमरगीत प्रसंग में भ्रमर के प्रति अन्योक्ति के माध्यम से गोपियों की तीव्र विरहानुभूति अभिव्यक्त हुई है। जो अत्यन्त ललित, ह्रदयावर्धक तथा संगीतमय पदों मे वर्णित है। भ्रमर को माध्यम बनाकर किया गया गोपियों का विद्ग्ध वार्तालाप ही कृष्ण काव्य में भ्रमरगीत के नाम से जाना है। भागवत के इसी प्रसंग को आधार बनाकर सूरदास ने अपनी असाधारण प्रतिभा से मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। भागवत में जहॉ गोपियॉ भक्ति की प्रधानता को ही प्रकट करती है। डॉ. स्नेहलात श्रीवास्तव का मत है, सूरदास ने यद्यपि भागवत को आधार माना है किंतु कथन का विस्तार तथा भिन्न्ता उनकी मौलिक प्रतिभा की व्यजंना है।

सूरदास का भ्रमारगीत मनोरम और आकर्षक है। सूर की अक्षय कीर्ती का भ्रमरगीत स्मारक है। इसमें विरहानुभूति का वर्णन अद्वितीय है। वियोग से उत्पन्न विरहानुभूति ही भक्तिभावना को चरम उत्कर्ष प्रदास करती है। गोपियों के प्रेम की वास्तविकता का परिचय वियोग में ही होता है। उध्दव के आने से पूर्व गोपियों का विरह आशा और प्रतिक्षा भरा था लेकिन उध्दव के आने पर आशा की डोर ही टूट जाती है। अब प्रतिक्षा निरर्थक है – आस रही जिय कबहू मिलन की, तुम आवात ही नासी।

उध्दव ब्रज में आते ही गोपियों को निर्गुण ब्रहम की उपासना का उपदेश देने लगते है। विरह की मारी गोपियॉ गहरी दुखानुभूति में भर कर उध्दव का संदेश सुनती है–

ताहि अजहु किन सबै सयानी, खोजत जाही महामुनी ज्ञानी।
जाके रुप रेखा कुछ नाही, नयन मुँदि चितवन चित माही।

हृदय कमल के जोति बिराजे, अनहद नाद निरन्तर बाजै।
इडा पिंगला सुखमन नारु, सून्य सहज में बसै मुरारी।

गोपियॉ तो नंदनंदन से मन, वचन और कर्म से गहरी भक्ति करती हैं। उन्हे उध्दव के वचन करुई ककरी, के समान लगते है। वे बडे भोलेपन से कहती है।

तौ हम मानै बात तुम्हारी।
अपनो ब्रहम दिखा वहू उधौ मुकुट–पितांबरधारी।।

भूत समान ब्रहम की उपासना वे कैसे कर सकती है। उन्हे ज्ञान का प्रतिक है। उध्दव को फटकारते हुए कहती हैं–

रहुरे मधुकर मधु मतवारे
कोन काज या निरगुन सौ, चिर जीवहू कान्ह हमारे।

वे तो केवल श्रीकृष्ण की प्रीति और भक्ति से अनुस्यूत है। गोपाल के विरह में उन्हे कुँह भी बैरी लगते है, राह देखते उनकी ऑखे गुजों के समान हो गयी है। उनकी अखियॉ केवल हरि दर्शन की प्यासी है। उसम कमलनैन को देख न पाने के कारण रात–दिन उदास रहती है। आखिर गोपियॉ भी क्या करें उनके माखनचोर हृदय में ऐसे गड गये है कि निकाले नहीं निकलते। वो तो अपनी त्रिभंगी छवी में हृदय में तिरछे हो कर अड गये हैं।

वे उध्दव से प्रार्थना करती है कि, तुम जाकर कृष्ण से केवल इतना कह देना कि गोपियों के शरीर रुपी वृक्ष को हृदय के श्वासरुपी पवन से युक्त विरहाग्नि ने अत्यन्त प्रज्वलित कर दिया है। हमारा यह सारा दु:ख तुम अवश्य ही बताना –

उधी जो हरि हितू तुम्हारे
तो तुम कहियो जाय कृपा करी, ए दुख सबै हमारे।

गोपियॉ कृष्ण के प्रति अनन्य प्रेम और विश्वास को किसी भी साधना से श्रेष्ठ मानती है। यदि उध्दव उनके प्रेम को लौकिक बताकर एक उच्चस्तरीय ज्ञान और योग की ओर संकेत करते है तो गोपियॉ भी वाक्चातुरी से उध्दव को चकित कर देती है–

उधौ मन न भये दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम संग को अवराधै ईस।।

अब वे किस मन से उध्दव के निर्गुण ब्रहम की उपासना करे। अब तो वे उधौ की बात सुनने की मन:स्थिति मे ही नहीं है। वे उध्दव पर व्यंग्य के बाण छोडने लगती है–

आयौ घौष बडो व्यौपारी।
खेप लादि गुरु ज्ञान जोग की, ब्रज में आनि उतारि।

तो कभी कहती है 'आयो जोग ब्रज न बिके है।' गोपियों के व्यंग्य से उध्दव तिलमिला उठता है। अचरज की बात तो यह कि इन भोली ब्रज बालाओं की सामान्य उक्तियों से उध्दव की सारी उक्तियॉ निर्बल, निस्तेज हो जाती है।

भ्रमरगीत मे राधा का चित्र अत्यन्य सौम्य शालीन और संक्षिप्त है। जब कृष्ण मथुरा जाने को उद्यत होते हैं तो उस समय वह विद्रोह करने पर उतारु होकर कहती है–

"हौं सांवरे के संग जै हों।
होनी होइ सु होइ उभै लै हठ यश–अपयश काहू न डरै हौं।"

लेकिन जब कृष्ण उसे छोड चले जाते तो वह मूर्च्छित हो जाती है। यह मूर्च्छा ही स्तब्धता मे बदल जाती है। उसके मन का क्षोभ, आक्रोष,ग्लानि,स्नेह आदि मन के भीतर ही घुमडते रहते है। उध्दव के सामने भी वे साश्रु मूक बनी रहती है। जब प्रिय ने ही उसके प्रेम का उपहास किया है तो अपनी इस लांछना और तिरस्कार का ढिंढोरा क्यों पिटती फिरे। वह करुणा और दैन्य की साक्षात् मूर्ति बन जाती है –

'अति मलिन वृषभानुकुमारी। '

उध्दव मथुरा लौटकर राधा की दशा का अत्यन्त मार्मिक वर्णन करते हैं –

"गो देखत कही उठी राधिका, अंक तिमिर कौ दिन्ही।
तन अति कंप विरह अतिव्याकुल, उर धुक–धुक अति किन्ही।"

राधा की करुण दशा का वर्णन सुनकर कृष्ण भी विकल हो जाते हैं। उध्दव तो कृष्ण से फिर ब्रज लौटने की बात कहने लगते है – 'फिरी ब्रज बसौ नंद कुमार ।" सूरदास की राधा के संदर्भ में आचार्य द्विवेदी जी कहते है– ' वह संयोग में सोलह आना सयोंगमय तो वियोगावस्था में सोलह आना वियोगमय है। '

मथुरा से जो लोग लौटकर आते है वे तीन सुचनाएँ भी लाते है– कंस को मारकर कृष्ण मधुपुरी के राजा बन गये है, उनके माता–पिता, नंद–यशोदा नहीं बल्कि वसुदेव–देवकी है और कृष्ण की अर्ध्दांगिनी कुब्जा नामक कुबडी दासी है। इस तीसरी बात को सुनकर ही गोपियों का विरह प्रखर हो जाता है। गोपियों का विरह प्रखर हो जाता है। गोपियों कों हॅसी भी बहुत आती है कि क्या जोडी मिली है–

"ए अहिर वह दासी पूर की, विधिना जोरी भली मिलाई।"

कृष्ण–कुब्जा का साथ तो ऐसा है जैसे लहसून और कपूर का । गोपियॉ शंकित है कि राधा को त्याग कर कृष्ण कुब्जा को कैसे धारण कर सकते है। लेकिन सूरदास शंका निरस करते – है, सूर मिलै मन जाहि सो, ताकौ कहा करै काजी।।

गोपियॉ खिन्न है कि कृष्ण ने फाग तो हमसे खेला, बिरुद भी गोपीनाथ है और पत्नी बनाया कुब्जा को। यदि उसके कुबड से इतना ही प्रेम है तो वे अपनी पीठ पर भी कुबड निकालकर चले। कुब्जा उन गोपियों के लिए मूर्तिमान व्यंग्य बन गई है।

कृष्ण भी अपने परिवर्तित रुप में गोपियों के लिए व्यंग्य बन गये है। विरह में संयोग के क्षण छोटे लगने लगे हैं वे सोचती है – करि गये थोरे दिन की प्रीति। यह प्रेम तो हमारा हनन ही है। तभी तो वे कहती है– 'प्रीति कर दीनी गरे छुरी' या 'डार गये गर फॉसी' गोपियों ने कृष्ण के प्रेम को विहंगम प्रीति का नाम दिया है जिसने उन्हे आर्यपथ सेभी विमुख कर दिया और कुलमर्यादा भी समाप्त कर दी है। ब्रज वासियों की विरहगाथा कथन के लिए नही अनुभूति के योग्य हो गई है।

सूरदास जी के काव्य में उनका भक्त ह्रदय ही अभिव्यक्त हुआ है। किंतु उसका रुप प्रत्यक्ष न होकर विभिन्न माध्यमों से व्यक्त हुआ है। कभी यशोदा – नंद, कभी गोपियॉ तो कभी राधा के रुप में सूरदास का विरही मन मुखरित हो उठता है। वे तो निरन्तर प्रेम साधना में डूबे रहने वाले कृष्ण के अनन्य भक्त थे। सूरदास के काव्य में उनके ह्रदय की गहन भावानुभूतियों को ही अभिव्यक्त मिली है। सूरदास अपने आराध्य के साथ पूर्ण रुप से घुल मिल गए है। सगुणोपासक भक्त कवियों में सूरदास जी का महत्व निर्विवाद रुप से अनन्य साधारण है।